द्वादशांगी की रचना, उसका ह्रास एवं आगम-लेखन

✪आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी म.सा.

आचार्यप्रवर श्री हस्तीमल जी महाराज ने नन्दीसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, अंतगडदसासूत्र, प्रश्नव्याकरण आदि सूत्रों का विवेचन किया है। वे प्रसिद्ध आगम-विवेचक रहे। जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग—२ में उन्होंने आगम—विषयक प्रचुर जानकारी का समावेश किया है। उसमें से ही कुछ अंश का संकलन कर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। यह सामग्री 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग—२, के तीन स्थलों से ली गई है। इसमें वर्तमान द्वादशांगी की रचना, उसके ह्रास एवं आगम-लेखन पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। —**सम्पादक**

वर्तमान द्वादशांगी के रचयिता आर्य सुधर्मा

समस्त जैन परम्परा की मान्यतानुसार तीर्थंकर भगवान् अपनी देशना में जो अर्थ अभिव्यक्त करते हैं, उसको उनके प्रमुख शिष्य गणधर शासन के हितार्थ अपनी शैली में सूत्रबद्ध करते हैं। वे ही बारह अंग प्रत्येक तीर्थंकर के शासनकाल में द्वादशांगी-सूत्र के रूप में प्रचलित एवं मान्य होते हैं।[१] द्वादशांगी का गणिपिटक के नाम से भी उल्लेख किया गया है।[२] सूत्र गणधर-कथित या प्रत्येकबुद्ध-कथित होते हैं। वैसे श्रुतकेवलि-कथित और अभिन्न दशपूर्वी-कथित भी होते हैं।[३]

यद्यपि विभिन्न तीर्थंकरों के धर्मशासन में तीर्थस्थापना के काल में ही गणधरों द्वारा द्वादशांगी की नये सिरे से रचना की जाती है तथापि उन सब तीर्थंकरों के उपदेशों में जीवादि मूल भावों की समानता एवं एकरूपता रहती है, क्योंकि अर्थ रूप से जैनागमों को अनादि-अनंत अर्थात् शाश्वत माना गया है। जैसा कि नन्दीसूत्र के ५८वें सूत्र में तथा समवायांगसूत्र के १८५वें सूत्र में कहा गया है—

"इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं न कयाई नासी, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च भवइ य भविस्सइ य, धुवे, निअए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए निच्चे।।"

समय-समय पर अंगशास्त्रों का विच्छेद होने और तीर्थंकरकाल में नवीन रचना के कारण इन्हें सादि और सपर्यवसित भी माना गया है।[४] इस प्रकार द्वादशांगी के शाश्वत और अशाश्वत दोनों ही रूप शास्त्रों में प्रतिपादित किये गये हैं। इस मान्यता के अनुसार प्रवर्तमान अवसर्पिणीकाल के अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के दिन जो प्रथम उपदेश इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधरों को दिया गया, भगवान की उस वाणी को अपने साथी अन्य सभी गणधरों की तरह आर्य सुधर्मा ने भी द्वादशांगी के रूप में सूत्रबद्ध किया।

ग्यारह गणधरों द्वारा पृथक्—पृथक् स्वतन्त्र रूप से ग्रथित बारह ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगों में शब्दों और शैली की न्यूनाधिक विविधता होने पर भी उनके मूल भाव तो पूर्णरूपेण वही थे जो भगवान महावीर ने प्रकट किये।

भगवान महावीर के ११ गणधरों की वाचनाओं की अपेक्षा से ९ गण थे और उनकी पृथक्-पृथक् ९ वाचनाएँ थीं। ११ में से ९ गणधर तो भगवान महावीर के निर्वाण से पूर्व ही मुक्त हो गये। केवल इन्द्रभूति और आर्य सुधर्मा ये दो ही गणधर विद्यमान रहे। उनमें भी इन्द्रभूति गौतम तो प्रभु की निर्वाणरात्रि में ही केवली बन गये और १२ वर्ष पश्चात् आर्य सुधर्मा को अपना गण सौंप कर निर्वाण को प्राप्त हुए। अतः आर्य सुधर्मा को छोड़कर शेष दशों गणधरों की शिष्य-परम्परा और वाचनाएँ उनके निर्वाण के साथ ही समाप्त हो गई, आगे नहीं चल सकीं।

ऐसी अवस्था में भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके धर्मतीर्थ के उत्तराधिकार के साथ—साथ भगवान के समस्त प्रवचन का उत्तराधिकार भी आर्य सुधर्मा को प्राप्त हुआ और केवल आर्य सुधर्मा की ही अंगवाचना प्रचलित रही। बारहवें अंग दृष्टिवाद का आज से बहुत समय पहले विच्छेद हो चुका है। आज जो एकादशांगी उपलब्ध है, वह आर्यसुधर्मा की ही वाचना है। इस तथ्य की पुष्टि करने वाले अनेक प्रमाण आगमों में उपलब्ध हैं। उनमें से कुछ प्रमाण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

आचारांग सूत्र के उपोद्घातात्मक प्रथम वाक्य में—"**सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं।**" अर्थात्— हे आयुष्मन् (जंबू) मैंने सुना है, उन भगवान महावीर ने इस प्रकार कहा है.............। इस वाक्य रचना से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस वाक्य का उच्चारण करने वाला गुरु अपने शिष्य से वही कह रहा है जो स्वयं उसने भगवान महावीर के मुखारविन्द से सुना था।

आचारांग सूत्र की ही तरह समवायांग, स्थानांग, व्याख्या-प्रज्ञप्ति आदि अंगसूत्रों में तथा उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि अंगबाह्य श्रुत में भी आर्य सुधर्मा द्वारा विवेच्य विषय का निरूपण— "**सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं**" इसी प्रकार की शब्दावली से किया गया है।

अनुत्तरौपपातिक सूत्र, ज्ञाताधर्म कथा आदि के आरंभ में और भी स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है:—

"**..........तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, अज्ज सुहम्मस्स समोसरणं........परिसा पडिगया।।2।।**

जंबू जाव पज्जुवासइ एवं वयासी जइणं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, नवमस्स णं भंते! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते।।3।।

तएणं से सुहम्मे अणगारे जंबू अणगारं एवं वयासी— एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता।।4।।"

आर्य जम्बू ने अपने गुरु आर्य सुधर्मा से समय-समय पर अनेक प्रश्न प्रस्तुत करते हुए पूछा— "भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने अमुक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंग का क्या अर्थ बताया?''

अपने शिष्य जम्बू के प्रश्न के उत्तर में उन अंगों का अर्थ बताने का उपक्रम करते हुए आर्य सुधर्मा कहते हैं– ''आयुष्मन् जंबू! अमुक अंग का जो अर्थ भगवान महावीर ने फरमाया, वह मैंने स्वयं ने सुना है। उन प्रभु ने अमुक अंग का, अमुक अध्ययन का, अमुक वर्ग का यह अर्थ फरमाया है......''

अपने शिष्य जम्बू को आगमों का ज्ञान कराने की उपरिवर्णित परिपाटी सुखविपाक, दु:खविपाक आदि अनेक सूत्रों में भी परिलक्षित होती है।

नायाधम्मकहाओ के प्रारम्भिक पाठ से भी यही प्रमाणित होता है कि वर्तमान काल में उपलब्ध अंगशास्त्र आर्य सुधर्मा द्वारा गुम्फित किये गये हैं।[५]

आगमों में उल्लिखित– ''उन भगवान ने इस प्रकार कहा–'' इस वाक्य से यह स्पष्टत: प्रकट होता है कि इन आगमों में जो कुछ कहा जा रहा है उसमें किंचित्मात्र भी स्वकल्पित नहीं, अपितु पूर्णरूपेण वही शब्दबद्ध किया गया है जो श्रमण भगवान महावीर ने उपदेश देते समय अर्थत: श्रीमुख से फरमाया था।

केवल धवला को छोड़कर सभी प्राचीन दिगम्बर ग्रन्थों में भी यही मान्यता अभिव्यक्त की गई है कि अर्थ रूप में भगवान् महावीर ने उपदेश दिया और उसे सभी गणधरों ने द्वादशांगी के रूप में ग्रथित किया। आचार्य पूज्यपाद देवनन्दी ने विक्रम की छठी शताब्दी में तत्त्वार्थ पर सर्वार्थसिद्धि की रचना की, उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से लिखा है कि परम अचिन्त्य केवलज्ञान की विभूति से विभूषित सर्वज्ञ परमर्षि तीर्थंकर ने अर्थरूप से आगमों का उपदेश दिया। उन तीर्थंकर भगवान् के अतिशय बुद्धिसम्पन्न एवं श्रुतकेवली प्रमुख शिष्य गणधरों ने अंग-पूर्व लक्षण वाले आगमों (द्वादशांगी) की रचना की।[६]

इसी प्रकार आचार्य अकलंक देव (वि. ८वीं शती) ने तत्त्वार्थ पर अपनी राजवार्तिक टीका में[७] और आचार्य विद्यानन्द[८] (वि.९वीं शती) ने अपने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक में इसी मान्यता को अभिव्यक्त किया है कि तीर्थंकर आगमों का अर्थत: उपदेश देते हैं और उसे सभी गणधर द्वादशांगी के रूप में शब्दत: ग्रथित करते हैं।

धवला में यह मन्तव्य दिया गया है कि आर्य सुधर्मा को अंगज्ञान इन्द्रभूति गौतम ने दिया। परन्तु श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं के प्राचीन ग्रन्थों में कहीं इस प्रकार का उल्लेख नहीं मिलता। ऐसी दशा में यही कहा जा सकता है कि धवलाकार की यह अपनी स्वयं की नवीन मान्यता है।

श्वेताम्बर आचार्यों की ही तरह धवलाकार के अतिरिक्त अन्य सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन दिगम्बर आचार्यों की यह मान्यता है कि भगवान महावीर ने सभी गणधरों को अर्थतः द्वादशांगी का उपदेश दिया। जयधवला में जब यह स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि आर्य सुधर्मा ने अपने उत्तराधिकारी शिष्य जम्बूकुमार के साथ-साथ अन्य अनेक आचार्यों को द्वादशांगी की वाचना दी थी[१] तो यह कल्पना धवलाकार ने किस आधार पर की कि श्रमण भगवान महावीर ने अर्थतः द्वादशांगी का उपदेश सुधर्मादि अन्य गणधरों को न देकर केवल इन्द्रभूति गौतम को ही दिया?

ऐसी स्थिति में अपनी परंपरा के प्राचीन आचार्यों की मान्यता के विपरीत धवलाकार ने जो यह नया मन्तव्य रखा है कि आर्य सुधर्मा को द्वादशांगी का ज्ञान भगवान् महावीर ने नहीं, अपितु इन्द्रभूति गौतम ने दिया, इसका औचित्य विचारणीय है।

ऊपर उल्लिखित प्रमाणों से यह निर्विवादरूपेण सिद्ध हो जाता है कि अन्य गणधरों के समान आर्य सुधर्मा ने भी भगवान महावीर के उपदेश के आधार पर द्वादशांगी की रचना की। अन्य दश गणधर आर्य सुधर्मा के निर्वाण से पूर्व ही अपने-अपने गण उन्हें सम्हला कर निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। अतः आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित द्वादशांगी ही प्रचलित रही और आज वर्तमान में जो एकादशांगी प्रचलित है वह आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित है। शेष गणधरों द्वारा ग्रथित द्वादशांगी वीर निर्वाण के कुछ ही वर्षों पश्चात् विलुप्त हो गई।

द्वादशांगी का ह्रास एवं विच्छेद

जिस प्रकार आज की श्रमण-परम्परा आर्य सुधर्मा की शिष्य परम्परा है उसी प्रकार आज की श्रुतपरम्परा भी आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित द्वादशांगी ही है।

भगवान महावीर ने विकट भवाटवी के उस पार पहुँचाने वाला, जन्म, जरा, मृत्यु के अनवरत चक्र से परित्राण करने वाला, अनिर्वचनीय शाश्वत सुखधाम मोक्ष का जो प्रशस्त पथ प्रदर्शित किया था, उस मुक्तिपथ पर अग्रसर होने वाले असंख्य साधकों को आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित द्वादशांगी प्रकाशदीप की तरह २५०० वर्ष से आज तक पथ प्रदर्शन करती आ रही है। इस ढाई हजार वर्ष की सुदीर्घ अवधि में भीषण द्वादशवार्षिक दुष्कालों जैसे प्राकृतिक प्रकोपों, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक क्रान्तियों आदि के कुप्रभावों से आर्य सुधर्मा द्वारा ग्रथित द्वादशांगी भी पूर्णतः अछूती नहीं रह पाई। इन सबके अतिरिक्त कालप्रभाव, बुद्धिमान्द्य, प्रमाद, शिथिलाचार, सम्प्रदायभेद, व्यामोह आदि का घातक दुष्प्रभाव भी द्वादशांगी पर पड़ा। यद्यपि आगमनिष्णात आचार्यों, स्वाध्यायनिरत श्रमण-श्रमणियों एवं जिनशासन के हितार्थ अपना सर्वस्व तक न्यौच्छावर कर देने वाले सद्गृहस्थों ने श्रुतशास्त्रों को अक्षुण्ण और सुरक्षित बनाये रखने के लिये सामूहिक तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तिगत रूप से समय—समय पर प्रयास किये, अनेक बार श्रमण-श्रमणी वर्ग और संघ ने एकत्रित हो आगम— वाचनाएँ कीं, किन्तु फिर भी काल अपनी काली छाया फैलाने में येन केन प्रकारेण सफल होता ही गया। परिणामतः उपरिवर्णित दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के कारण द्वादशांगी का समय-समय पर बड़ा ह्रास हुआ।

द्वादशांगी का कितना भाग आज हमारे पास विद्यमान है और कितना भाग हम अब तक खो चुके हैं, इस प्रकार का विवरण प्रस्तुत करने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि मूलतः अविच्छिन्नावस्था में द्वादशांगी का आकार—प्रकार कितना विशाल था। इस दृष्टि से आर्य सुधर्मा के समय में द्वादशांगी का जिस प्रकार का आकार—प्रकार था, उसकी तालिका यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

श्वेताम्बर परम्परानुसार द्वादशांगी की पदसंख्या

अंग का नाम	समवायांग के अनुसार	नंदीसूत्र	सम.वृत्ति	नंदी वृत्ति
१. आचारांग	१८०००	,,	,,	,,
२. सूत्रकृतांग	३६०००	,,	,,	,,
३. स्थानांग	७२०००	,,	,,	,,
४. समवायांग	१४४०००	,,	,,	,,
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति	८४०००	२८८०००	८४०००	२८८०००
६. ज्ञाताधर्मकथा	संख्यात हजार	संख्यात हजार	५७६०००	५७६०००
७. उपासकदशा	,,	,,	११५२०००	११५२०००
८. अंतकृद्दशा	,,	,,	२३०४०००	२३०४०००
९. अनुत्तरौपपातिक	,,	,,	४६०८०००	४६०८०००
१०.प्रश्नव्याकरण	,,	,,	९२१६०००	९२१६०००
११.विपाकसूत्र	,,	,,	१८४३२०००	१८४३२०००
१२.दृष्टिवाद	,,	,,	—	—

दिगम्बर परम्परानुसार[10] द्वादशांगी की पद, श्लोक एवं अक्षर-संख्या

अंग का नाम	पद संख्या	श्लोक संख्या	अक्षर संख्या
१. आचारांग	१८०००	९१९५९२३११८७०००	२९९२६९५४१९८४०००
२. सूत्रकृत	३६०००	१८३९१८४६३७४०००	५८८५३९०८३९६८०००
३. स्थानांग	४२०००	२१४५७१५४१०३०००	६८६६२८९३१२९६०००
४. समवायांग	१६४०००	८३७८५०७७९२६०००	२६८११२२४९३६३२०००
५. विपाकप्रज्ञप्ति	२२८०००	११६४८१६९३७०२०००	३७२७४१४१९८४६४०००
६. ज्ञाताधर्मकथा	५५६०००	२८४०५१८४९५५४०००	९८९६५९१८५७२८०००
७. उपासकाध्ययन	११७००००	५९७७३५००७१५५०००	१९१२७५२०२२८९६००००
८. अंतकृद्दशांग	२३२८०००	११८९३३९३१८८५२०००	३८०५८८६०७६३२३४०००
९. अनुत्तरौत्पाद	९२२४४०००	४७२२६१७४४१४६०००	१५११२३७५८११६६७०००
१०प्रश्नव्याकरण	९३१६०००	४७५९१४०११३३८९४०००	१५२३००८३६२८४६०८०००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११.विपाकसूत्रांग	१८४००००	२४००२७७०३५६०००००	३००८०८८६५१३९२००००००
१२.दृष्टिवादांग	१०८६८५६००५	५५५२५८०१८७३९४२७१०७	१७७६८२५६५९९६६१६६७४०

पूर्वों की पदसंख्या

पूर्वनाम	श्वेताम्बर परम्परानुसार	दिगम्बर परम्परानुसार
१. उत्पादपूर्व	एक करोड़ पद	एक करोड़ पद
२. अग्रायणीय	छियानवे लाख	छियानवे लाख
३. वीर्यप्रवाद	सत्तर लाख	सत्तर लाख
४. अस्तिनास्ति प्रवाद	साठ लाख	साठ लाख
५. ज्ञानप्रवाद	एक कम एक करोड़	एक कम एक करोड़ पद
६. सत्यप्रवाद	एक करोड़ छः पद	एक करोड़ छः पद
७. आत्मप्रवाद	छब्बीस करोड़ पद	छब्बीस करोड़ पद
८. कर्मप्रवाद	१ करोड़ अस्सी हजार	१ करोड़ ८० लाख पद
९. प्रत्याख्यान पद	८४ लाख पद	८४ लाख पद
१०. विद्यानुवाद	१ करोड़ १० लाख पद	१ करोड़ १० लाख पद
११. अवंध्य	२६ करोड़ पद	२६ करोड़ पद[११]
१२. प्राणायु	१ करोड़ ५६ लाख पद	१३ करोड़ पद[१२]
१३. क्रियाविशाल	९ करोड़ पद	९ करोड़ पद
१४. लोकबिन्दुसार	साढ़े बारह करोड़ पद	साढ़े बारह करोड़ पद

उपर्युल्लिखित तालिकाओं में अंकित दृष्टिवाद और चतुर्दश पूर्वों की पदसंख्या से यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं के आगमों एवं आगम संबंधी प्रामाणिक ग्रन्थों में दृष्टिवाद की पदसंख्या संख्यात मानी गई है। शीलांकाचार्य ने सूत्रकृतांग की टीका में पूर्व को अनन्तार्थ युक्त बताते हुए लिखा है—

"पूर्व अनन्त अर्थ वाला होता है और उसमें वीर्य का प्रतिपादन किया जाता है। अतः उसकी अनन्तार्थता समझनी चाहिए।"

अपने इस कथन की पुष्टि में उन्होंने दो गाथाएँ प्रस्तुत करते हुए लिखा है— "समस्त नदियों के बालुकणों की गणना की जाय अथवा सभी समुद्रों के पानी को हथेली में एकत्रित कर उसके जलकणों की गणना की जाय तो उन बालुकणों तथा जलकणों की संख्या से भी अधिक अर्थ एक पूर्व का होगा।

इस प्रकार पूर्व के अर्थ की अनन्तता होने के कारण वीर्य की भी पूर्वार्थ के समान अनन्तता (सिद्ध) होती है।[१३]

नंदी बालावबोध में प्रत्येक पूर्व के लेखन के लिए आवश्यक मसि की जिस अतुल मात्रा का उल्लेख किया गया है उससे पूर्वों के संख्यात पद और अनन्तार्थयुक्त होने का आभास होता है।[१४] ये तथ्य यही प्रकट करते हैं कि पूर्वों की पदसंख्या असीम अर्थात् उत्कृष्टसंख्येय पदपरिमाण की थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सब उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि द्वादशांगी का पूर्वकाल में बहुत बड़ा पद परिमाण था। कालजन्य मन्दमेधा आदि कारणों से उसका निरन्तर ह्रास होता रहा। आचार्य कालक ने अपने प्रशिष्य सागर को कभी गर्व न करने का उपदेश देते हुए जो धूलि की राशि का दृष्टांत दिया उस दृष्टांत से सहज ही यह समझ में आ जाता है कि वस्तुत: द्वादशांगी का ह्रास किस प्रकार हुआ। कालकाचार्य ने अपनी मुट्ठी में धूलि भर कर उसे एक स्थान पर रखा। फिर आचार्य कालक ने अपने प्रशिष्य सागर को संबोधित करते हुए कहा– ''वत्स! जिस प्रकार यह धूलि की राशि इदा एक स्थान से दूसरे, दूसरे से तीसरे और तीसरे से चौथे स्थान पर रखने के कारण निरन्तर कम होती गई है, ठीक इसी प्रकार तीर्थंकर भगवान महावीर से गणधरों को जो द्वादशांगी का ज्ञान प्राप्त हुआ था वह गणधरों से हमारे पूववर्ती अनेक आचार्यों को, उनसे उनके शिष्यों और प्रशिष्यों आदि को प्राप्त हुआ, वह द्वादशांगी का ज्ञान एक स्थान से दूसरे, दूसरे से तीसरे और इसी क्रम में अनेक स्थानों में आते–आते निरन्तर ह्रास को ही प्राप्त होता चला आया है।'' ३४ अतिशय, ३५ वाणी के गुण और अनन्त ज्ञान–दर्शन–चारित्र के धारक प्रभु महावीर ने अपनी देशना में अनन्त भावभंगियों की अनिर्वचनीय एवं अनुपम तरंगों से कल्लोलित जिस श्रुतगंगा को प्रवाहित किया, उसे द्वादशांगी के रूप में आबद्ध करने का गणधरों ने यथाशक्ति पूरा प्रयास किया, पर वे उसे निश्शेष रूप से तो आबद्ध नहीं कर पाये। तदनन्तर आर्य सुधर्मा से आर्य जम्बू ने, जम्बू से आर्य प्रभव ने और आगे चलकर क्रमश: एक के पश्चात् दूसरे आचार्यों ने अपने–अपने गुरु से जो द्वादशांगी का ज्ञान प्राप्त किया उसमें एक स्थान से दूसरे स्थान में आते–आते द्वादशांगी के अर्थ के कितनी बड़ी मात्रा में पर्याय निकल गए, छूट गए अथवा विलीन हो गए, इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

आर्य भद्रबाहु के पश्चात् (वी.नि.सं. १७०) अन्तिम चार पूर्व अर्थत: और आर्य स्थूलभद्र के पश्चात् (वी.नि.सं. २१५) शब्दत: विलुप्त हो गए।

द्वादशांगी के किस–किस अंश का किन–किन आचार्यों के समय में ह्रास हुआ यह यथास्थान बताने का प्रयास किया जायेगा। आर्य सुधर्मा से प्राप्त द्वादशांगी में से आज हमारे पास कितना अंश अवशिष्ट रह गया, यहाँ केवल यही बताने के लिए एक तालिका दी जा रही है, जो इस प्रकार है–

अंग का नाम	**मूल पद संख्या**	**उपलब्ध पाठ (श्लोक प्रमाण)**
आचारांग	१८०००	२५०० महापरिज्ञा नामक ७वाँ अध्ययन विलुप्त हो चुका है।
सूत्रकृतांग	३६०००	२१००
स्थानांग	७२०००	३७७०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवायांग	१४४०००	१६६७
व्याख्याप्रज्ञप्ति	२८८०००(नंदीसूत्र)[१५] ८४०००(समवायांग)[१६]	१५७५२
ज्ञातृधर्मकथा	समवायांग और नन्दी के अनुसार संख्येय हजार पद और इन दोनों अंगों की वृत्ति के अनुसार ५७६०००	५५०० इस अंग के अनेक कथानक वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं।
उपासकदशा	संख्यात हजार पद सम. एवं नंदी के अनुसार पर दोनों सूत्रों की वृत्ति के अनुसार ११५२०००	८१२
अंतकृद्दशा	संख्यात हजार पद, सम. नंदी वृत्ति के अनुसार २३०४०००	९००
अनुत्तरौपपातिकदशा	संख्यात हजार पद, सम. नंदी वृ. के अनुसार ४६०८०००	१९२
प्रश्नव्याकरण	संख्यात हजार पद, सम. एवं नंदी वृ. के अनुसार ९२१६०००	१३०० समवायांग और नंदी सूत्र में प्रश्नव्याकरण सूत्र का जो परिचय दिया गया है, वह उपलब्ध प्रश्नव्याकरण में विद्यमान नहीं है।
विपाक सूत्र	संख्यात हजार पद, सम. और नंदी वृ. के अनुसार १८४३२०००	१२१६
दृष्टिवाद	संख्यात हजार पद	पूर्वो सहित बारहवां अंग वीर निर्वाण सं. १००० में विच्छिन्न हो गया।

वस्तुस्थिति यह है कि द्वादशांगी का बहुत बड़ा अंश कालप्रभाव से विलुप्त हो चुका है अथवा विच्छिन्न-विकीर्ण हो चुका है। इस क्रमिक ह्रास के उपरान्त भी द्वादशांगी का जितना भाग आज उपलब्ध है वह अनमोल निधि है और साधना पथ में निरत मुमुक्षुओं के लिए बराबर मार्गदर्शन करता आ रहा है।

श्वेताम्बर परम्परा की मान्यता है कि दुःषमा नामक प्रवर्तमान पंचम आरक के अन्तिम दिन पूर्वाह्न काल तक भगवान् महावीर का धर्मशासन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर वाणी द्वादशांगी अंशतः विद्यमान रह कर भव्यों का उद्धार करते रहेंगे।

तित्थोगाली में अनुक्रम से यह विवरण दिया हुआ है कि किस–किस अंग का किस–किस समय में विच्छेद होगा।''[१७] श्रुतविच्छेद के संबंध में दो प्रकार के अभिमत रहे हैं, इस प्रकार का आभास नन्दीसूत्र की चूर्णि से स्पष्टतः प्रकट होता है। नन्दीसूत्र-थेरावली की ३२ वीं गाथा की व्याख्या में नन्दीचूर्णिकार ने इन दोनों प्रकार के मन्तव्यों का उल्लेख करते हुए लिखा है– ''बारह वर्षीय भीषण दुष्काल के समय आहार हेतु इधर–उधर भ्रमण करते रहने के फलस्वरूप अध्ययन एवं पुनरावर्तन आदि के अभाव में श्रुतशास्त्र का ज्ञान नष्ट हो गया। पुनः सुभिक्ष होने पर स्कंदिलाचार्य के नेतृत्व में श्रमणसंघ ने एकत्रित हो, जिस-जिस साधु को आगमों का जो जो अंश स्मरण था, उसे सुन-सुन कर सम्पूर्ण कालिक श्रुत को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित किया। वह वाचना मथुरा नगरी में हुई इसलिए उसे माथुरी वाचना और स्कन्दिलाचार्य सम्मत थी अतः स्कंदिलीय अनुयोग के नाम से पुकारी जाती है। दूसरे (आचार्य) कहते हैं– सूत्र नष्ट नहीं हुए, उस दुर्भिक्षकाल में जो प्रधान–प्रधान अनुयोगधर (श्रुतधर) थे, उनका निधन हो गया। एक स्कन्दिलाचार्य बचे रहे। उन्होंने मथुरा में साधुओं को पुनः शास्त्रों की वाचना-शिक्षा दी, अतः उसे माथुरी वाचना और स्कन्दिलीय अनुयोग कहा जाता है।''[१८]

नन्दीचूर्णि में जो उक्त दो अभिमतों का उल्लेख किया गया है, उन दोनों प्रकार की मान्यताओं को यदि वास्तविकता की कसौटी पर कसा जाय तो वस्तुतः पहली मान्यता ही तथ्यपूर्ण और उचित ठहरती है। ''सूत्र नष्ट नहीं हुए''– इस प्रकार की जो दूसरी मान्यता अभिव्यक्त की गई है वह तथ्यों पर आधारित प्रतीत नहीं होती। द्वादशांगी की प्रारम्भिक अवस्था के पद-परिमाण और वर्तमान में उपलब्ध इसके पाठ की तालिका इसका पर्याप्त पुष्ट प्रमाण है। इस संबंध में विशेष चर्चा की आवश्यकता नहीं, क्योंकि **वर्तमान में उपलब्ध द्वादशांगी का पाठ वल्लभी में हुई अन्तिम वाचना में देवर्द्धि क्षमाश्रमण आदि आचार्यों द्वारा वीर निर्वाण सं. 980 में निर्धारित किया गया था।** इस अन्तिम आगम वाचना से १५३ वर्ष पूर्व वीर नि.सं. ८२७ में, लगभग एक ही समय में दो विभिन्न स्थानों पर दो आगम वाचनाएँ, पहली आगम वाचना आर्य स्कंदिल की अध्यक्षता में मथुरा में और दूसरी आचार्य नागार्जुन के नेतृत्व में, वल्लभी में हो चुकी थीं। उपरिवर्णित द्वितीय मान्यता के अनुसार द्वादशांगी का मूलस्वरूप ८२७ वर्षों तक यथावत् बना रहा हो और केवल १५३ वर्षों की अवधि में ही इतने स्वल्प परिमाण में अवशिष्ट रह गया हो, यह विचार करने पर स्वीकार करने योग्य प्रतीत नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु के जीवनकाल में वीर नि.सं. १६० के आसपास की अवधि में हुई प्रथम आगम-वाचना के समय द्वादशांगी का जितना ह्रास हुआ, उसे ध्यान में रखते हुए विचार किया जाय तो हमें इस कटु सत्य को स्वीकार करना होगा कि वी. नि. सं. ८२७ में हुई स्कन्दिलीय और नागार्जुनीय वाचनाओं के समय तक द्वादशांगी का प्रचुर मात्रा में ह्रास हो चुका था तथा एकादशांगी का आज जो परिमाण उपलब्ध है, उससे कोई बहुत अधिक परिमाण स्कन्दिलीय और नागार्जुनीय वाचनाओं के समय में नहीं रहा होगा।

इन सब तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् पहले प्रश्न का यही वास्तविक उत्तर प्रतीत होता है कि कालप्रभाव, प्राकृतिक प्रकोपों एवं अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण प्रमुख सूत्रधरों के स्वर्गगमन के साथ–साथ श्रुत का भी शनैः शनैः ह्रास होता गया।

वल्लभी-परिषद् का आगम-लेखन

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय की यह परम्परागत एवं सर्वसम्मत मान्यता है कि वर्तमान में उपलब्ध आगम देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण द्वारा लिपिबद्ध करवाये गये थे। लेखनकला का प्रारम्भ भगवान ऋषभदेव के समय से मानते हुए भी यह माना जाता है कि आचार्य देवर्द्धि क्षमाश्रमण से पूर्व आगमों का व्यवस्थित लेखन नहीं किया गया। पुरातन परम्परा में शास्त्रवाणी को परमपवित्र मानने के कारण उसकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये आगमों को श्रुत-परम्परा से कण्ठाग्र रखने में ही श्रेय समझा जाता रहा। पूर्वकाल में इसीलिये शास्त्रों का पुस्तकों अथवा पन्नों पर आलेखन नहीं किया गया। यही कारण है कि तब तक श्रुत नाम से ही शास्त्रों का उल्लेख किया जाता रहा।

जैन परम्परा ही नहीं वैदिक परम्परा में भी यही धारणा प्रचलित रही और उसी के फलस्वरूप वेद वेदांगादि शास्त्रों को श्रुति के नाम से संबोधित किया जाता रहा। जैन श्रमणों की अनारम्भी मनोवृत्ति ने यह भी अनुभव किया कि शास्त्र-लेखन के पीछे बहुत सी खटपटें करनी होंगी। कागज, कलम, मसी और मसिपात्र आदि लाने, रखने तथा सम्हालनें में आरम्भ एवं प्रमाद की वृद्धि होगी। ऐसा सोच कर ही वे लेखन की प्रवृत्ति से बचते रहे। पर जब देखा कि शिष्यवर्ग की धारणा-शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती चली जा रही है, शास्त्रीय पाठों की स्मृति के अभाव से शास्त्रों के पाठ–परावर्तन में भी आलस्य तथा संकोच होता जा रहा है, बिना लिखे शास्त्रों को सुरक्षित नहीं रखा जा सकेगा, शास्त्रों के न रहने से ज्ञान नहीं रहेगा और ज्ञान के अभाव में अधिकांश जीवन विषय, कषाय एवं प्रमाद में व्यर्थ ही चला जायेगा, शास्त्र-लेखन के द्वारा पठन–पाठन के माध्यम से जीवन में एकाग्रता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बढाते हुए प्रमाद को घटाया जा सकेगा और ज्ञान-परम्परा को भी शताब्दियों तक अबाध रूप से सुरक्षित रखा जा सकेगा, तब शास्त्रों का लेखन सम्पन्न किया गया।

इस प्रकार संघ को ज्ञानहानि और प्रमाद से बचाने के लिये संतों ने शास्त्रों को लिपिबद्ध करने का निश्चय किया। जैन परम्परानुसार आर्यरक्षित एवं आर्य स्कन्दिल के समय में कुछ शास्त्रीय भागों का लेखन प्रारम्भ हुआ माना गया है। किन्तु आगमों का सुव्यवस्थित सम्पूर्ण लेखन तो आचार्य देवर्द्धि क्षमाश्रमण द्वारा वल्लभी में ही सम्पन्न किया जाना माना जाता है।

देवर्द्धि के समय में कितने व कौन-कौन से शास्त्र लिपिबद्ध कर लिये गये एवं उनमें से आज कितने उसी रूप में विद्यमान हैं, प्रमाणाभाव में यह नहीं कहा जा सकता। "आगम पुत्थयलिहिओ" इस परम्परागत अनुश्रुति में सामान्य रूप से आगम पुस्तक रूप में लिखे गये- इतना ही कहा गया है। संख्या का कहीं कोई उल्लेख तक भी उपलब्ध नहीं होता। अर्वाचीन पुस्तकों में ८४ आगम और अनेक ग्रन्थों के पुस्तकारूढ करने का उल्लेख किया गया है। नंदीसूत्र में कालिक और उत्कालिक श्रुत का परिचय देते हुए कुछ नामावली प्रस्तुत की है। बहुत संभव है देवर्द्धि क्षमाश्रमण के समय में वे श्रुत विद्यमान हों और उनमें से अधिकांश सूत्रों का देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने लेखन करवा लिया हो। नन्दीसूत्र में अंगप्रविष्ट एवं अंगबाह्य भेद करके अंगप्रविष्ट में १२ अंगों का निरूपण किया गया है। अंगबाह्य को दो भागों में विभक्त किया गया है- १. आवश्यक एवं २. आवश्यक व्यतिरिक्त। आवश्यक-१. सामाइयं २. चउवीसत्थओ ३. वंदणयं ४. पडिक्कमणं ५. काउस्सग्गो ६. पच्चक्खाणं। आवश्यक व्यतिरिक्त- १. कालिक २. उत्कालिक। पूर्ण नामावली इस प्रकार है-

अंगप्रविष्ट (12 अंग)

१. आयारो	२. सुयगडो
३. ठाणं	४. समवाओ
५. वियाहपण्णत्ती	६. नायाधम्मकहाओ
७. उवासगदसाओ	८. अंतगडदसाओ
९. अणुत्तरोववाइयदसाओ	१०. पण्हावागरणाइं
११. विवाग सुयं	१२. दिट्ठिवाओ (विच्छिन्न)

उत्कालिक श्रुत

१. दसवेयालियं	२. कप्पियाकप्पियं
३. चुल्लकप्पसुयं	४. महाकप्पसुयं
५. उववाइय	६. रायपसेणइय
७. जीवाभिगम	८. पन्नवणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. महापन्नवणा
१०. पमायप्पमाय
११. नंदी
१२. अणुओगदाराइं
१३. देविन्दथव
१४. तंदुलवेयालिय
१५. चंदाविज्जय
१६. सूरपण्णत्ति
१७. पोरिसिमंडल
१८. मंडलपवेस
१९. विज्जाचरणविणिच्छओ
२०. गणिविज्जा
२१. झाणविभत्ती
२२. मरणविभत्ती
२३. आयविसोही
२४. वीयरागसुयं
२५. संलेहणासुयं
२६. विहारकप्पो
२७. चरणविहि
२८. आउरपच्चक्खाण
२९. महापच्चक्खाण आदि

कालिक श्रुत

१. उत्तरज्झयणाइं
२. दसाओ
३. कप्पो
४. ववहारो
५. निसीहं
६. महानिसीहं
७. इसिभासियाइं
८. जंबूदीवपण्णत्ती
९. दीवसागरपण्णत्ती
१०. चंदपण्णत्ती
११. खुडियाविमाणपविभत्ती
१२. महल्लियाविमाणपविभत्ती
१३. अंगचूलिया
१४. वग्गचूलिया
१५. विवाहचूलिया
१६. अरुणोववाए
१७. वरुणोववाए
१८. गरुलोववाए
१९. धरणोववाए
२०. वेसमणोववाए
२१. वेलंधरोववाए
२२. देविन्दोववाए
२३. उट्ठाणसुयं
२४. समुट्ठाणसुयं
२५. नागपरियावणियाओ
२६. निरयावलियाओ
२७. कप्पिया
२८. कप्पवडंसिया
२९. पुप्फियाओ
३०. पुप्फचूलियाओ
३१. वण्हिदसाओ

इस प्रकार कुल ७८ श्रुत बताये गये हैं।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा द्वारा वर्तमान में ४५ आगम माने जाते हैं, पर स्थानकवासी और तेरापन्थ परम्परा में ११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद और १ आवश्यक इस प्रकार ३२ शास्त्रों को प्रामाणिक मानते हैं। ४५ सूत्रों की संख्या इस प्रकार है—

11 अंग

१. आचारांग
२. सूत्रकृतांग
३. स्थानांग
४. समवायांग
५. भगवती
६. ज्ञाताधर्मकथांग
७. उपासकदशांग
८. अंतकृतदशांग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. अनुत्तरौपपातिकदशांग
१०. प्रश्नव्याकरण
११. विपाक श्रुत

12 उपांग

१. औपपातिक	२. राजप्रश्नीय
३. जीवाभिगम	४. प्रज्ञापना
५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	६. चन्द्रप्रज्ञप्ति
७. सूर्यप्रज्ञप्ति	८. कल्पिका
९. कल्पावतंसिका	१०. पुष्पिका
११. पुष्पचूलिका	१२. वृष्णिदशा

10 प्रकीर्णक

१. चतुश्शरण प्रकीर्णक	२. आतुर प्रत्याख्यान
३. भक्त प्रत्याख्यान	४. संस्तार प्रकीर्णक
५. तंदुल वैचारिक	६. चन्द्रविद्यक / चन्दवेध्यक
७. देवेन्द्रस्तव	८. गणिविद्या
९. महाप्रत्याख्यान	१०. मरणसमाधि

6 छेदसूत्र

१. निशीथ	२. व्यवहार
३. बृहत्कल्प	४. दशाश्रुतस्कन्ध
५. महानिशीथ	६. जीतकल्प

4 मूलसूत्र

१. दशवैकालिक सूत्र	२. अनुयोगद्वार
३. उत्तराध्ययन	४. नन्दीसूत्र

2 चूलिका

१. ओघनिर्युक्ति	२. पिण्डनिर्युक्ति

कुछ लेखक **नन्दी** और **अनुयोगद्वार** सूत्र को चूलिका मानते हैं और ओघनिर्युक्ति एवं पिण्डनिर्युक्ति को एक मानकर आवश्यकसूत्र को भी मूलसूत्रों में गिनते हैं।

1 आवश्यक

१. आवश्यक सूत्र

इनमें से १० प्रकीर्णक, अंतिम २ छेदसूत्र और २ चूलिकाओं के अतिरिक्त ३२ सूत्रों को स्थानकवासी एवं तेरापंथ सम्प्रदाय मान्य करती हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सम्प्रदाय ४५ को प्रामाणिक स्वीकार करती है। उस स्थिति में ओघनिर्युक्ति एवं पिण्डनिर्युक्ति को एक सूत्र के रूप में सम्मिलित कर लिया जाता है।

नन्दीसूत्र-गत कालिक उत्कालिक सूत्रों की तालिका में १० में से ४ प्रकीर्णक, २ छेदसूत्र एवं २ चूलिकाएँ (ओघनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति) नहीं हैं और ऋषिभाषित का नाम जो कि नंदीसूत्र की तालिका में है, वह वर्तमान ४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों की संख्या में नहीं है। संभव है ४४—४५ आगम और ज्योतिषकरंडक आदि वीर नि.सं. ९८० में हुई वल्लभी परिषद् में लिखे गये हों। विद्वान इतिहासज्ञ पुरातन सामग्री के आधार पर इस संबंध में गम्भीरतापूर्वक गवेषणा करें तो सही तथ्य प्रकट हो सकता है।

स्पष्टीकरण

मूलसूत्रों की संख्या और क्रम के संबंध में विभिन्न मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं। कुछ विद्वानों ने ३ मूलसूत्र माने हैं तो कहीं ४ की संख्या उपलब्ध होती है। क्रम की दृष्टि से उत्तराध्ययन को पहला स्थान देकर फिर आवश्यक और दशवैकालिक बताया गया है जबकि दूसरी ओर उत्तराध्ययन, दशवैकालिक और आवश्यकसूत्र इस प्रकार मूलसूत्रों की संख्या तीन की गई है। पिण्डनिर्युक्ति तथा कहीं—कहीं पिण्डनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति को संयुक्त मान कर चार की संख्या मानी गयी है।

स्थानकवासी परम्परा के अनुसार आवश्यक और पिण्डनिर्युक्ति के स्थान पर नंदी और अनुयोगद्वार को मिला कर चार मूल सूत्र माने गये हैं। जबकि दूसरी परम्परा नन्दी और अनुयोगद्वार को चूलिका सूत्र के रूप में मान्य करती है।

संदर्भ

१. अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ।।
(आ. निर्युक्ति, गा. १९२, धवला भा.१, पृ. ६४,७२)

२. ''दुवालसंगे गणिपिडगे'' (समवायांगसूत्र १ व १३६, नंदी. ४०)

३. सुत्तं गणहरकथिदं, तहेव पत्तेयबुद्धकथिदं च।
सुदकेवलिणा कथिदं, अभिण्णदसपुव्वकथिदं च।।४।। (मूलाचार, ५—८०)

४. इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं वुच्छित्तिनयट्ठाए साइयं सपज्जवसियं, अवुच्छित्तिनयट्ठाए अणाइयं अपज्जवसियं।। (नन्दीसूत्र, सूत्र ४२)

५. ''तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्ज जंबू नामे अणगारे.............अज्ज सुहम्मस्स थेरस्स नच्चासन्ने नाइदूरे,.................. विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी जइणं भंते समणेणं भगवया महावीरेणं.......... ....पंचमस्स अंगस्स अयमट्ठे पण्णत्ते छट्ठस्स णं भंते! नायधम्मकहाणं के अट्ठे पण्णत्ते? जंबूत्ति अज्जसुहम्मे थेरे अज्ज जंबू नामं अणगारं एवं वयासी........।''
(नायाधम्मकहाओ १—५)

६. तत्र सर्वज्ञेन परमर्षिणा परमाचिन्त्यकेवलज्ञानविभूतिविशेषेण अर्थत आगम उद्दिष्टः। .. ..तस्य साक्षात् शिष्यैः बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैः गणधरैः श्रुतकेवलिभिरनुस्मृत-ग्रन्थरचनमंअंगपूर्वलक्षणम्।। (सर्वार्थसिद्धि १—२०)

७. बुद्ध्यतिशयर्द्धियुक्तैर्गणधरैरनुस्मृतग्रन्थरचनम्-आचारादि द्वादशविधमंगप्रविष्ट-मुच्यते। (राजवार्तिक १—२० १२, पृ. ७२)

८. (क) तस्याप्यर्थतः सर्वज्ञवीतरागप्रणेतृकत्वसिद्धेः अर्हद्भाषितार्थगणधर देवैः ग्रथितम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति वचनात्। (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, पृ.६)

(ख) द्रव्यश्रुतं हि द्वादशांगवचनात्मकमाप्तोपदेशरूपमेव, तदर्थज्ञानं तु भावश्रुतं, तदुभयमपि गणधरदेवानां भगवदर्हत्सर्वज्ञवचनातिशयप्रसादात् स्वमतिश्रुतज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमातिशयाच्च उत्पद्यमानं कथमाप्तायत्तं न भवेत्? (तत्वार्थश्लोकवार्त्तिक)

९. तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जंबूसामीयादीणमणेयाणमाइरियाणं वक्खाणिददुवालसंगो घाइचउक्कक्खयेण केवली जादो। (जयवला, पृ. ८४)

१०. अंगपण्णत्ति

११. दिगम्बर परम्परा में ११वें पूर्व का नाम कल्याण है।

१२. श्वेताम्बर परम्परानुसार पूर्वों की उपर्युक्त पदसंख्या समवायांग एवं नन्दीवृत्ति के आधार पर तथा दिगम्बर परम्परानुसार पदसंख्या धवला, जयधवला, गोम्मटसार एवं अंग पण्णत्ति के अनुसार दी गई है। (सम्पादक)

१३. यतोऽनन्तार्थं पूर्वं भवति, तत्र च वीर्यमेव प्रतिपाद्यते, अनन्तार्थता चातोऽवगनन्तव्या तद्यथा–

सव्वनईणं जा होज्ज बालुया गणणमागया सन्ती।
तत्तो बहुयतरागो, एगस्सस अत्थो पुव्वस्स।।१।।
सव्वसमुद्दाणजलं, जइ पत्थमियं हविज्ज संकलियं।
एत्तो बहुयतरागो, अत्थो एगस्स पुव्वस्स।।२।।

तदेव पूर्वार्थस्यानन्त्याद्वीर्यस्य च तदर्थत्वादनन्तता वीर्यस्येति।

{सूत्रकृतांग, (वीर्याधिकार) शीलांकाचार्यकृता टीका, आ. श्री जवाहरलाल जी म. द्वारा संपादित, पृ. ३३५)

१४. नंदीसूत्र (धनपतिसिंह द्वारा प्रकाशित) पृ. ४८२–८४

१५. दो लक्खा अट्ठासीइं पयसहस्साइं पयग्गेणं......(नंदी, पृ. ४५८, राय धनपतिसिंह)

१६. चउरासीइपयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता.....(समवायांग, पृ.१७९अ, राय धनपतिसिंह)

१७. तित्थोगाली एत्थं, वत्तव्वा होई आणुपुव्वीए।
जे तस्स उ अंगस्स, वुच्छेदो जहिं विणिद्दट्ठो।। व्या. भा. १०,७०४

१८. नंदीचूर्णि, पृ. ९ (पुण्यविजयजी म. द्वारा संपादित)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org